कर्मसाहित्ये निष्णाताः प्रेरका मार्गदर्शकाः संशोधकाश्च
सिद्धान्तमहोदधय आचार्य भगवन्तः (ग्रन्थ ३९)

श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वराः

मणिवर्य श्रीवीरशेखरविजयनिर्मिता

स्वोपज्ञ–

प्रेमप्रभावृत्तिसूशोभिता

भवस्थितिः (२)

दशपरिशिष्टपरिकलिता

भारतीय प्राच्यतत्व प्रकाशन समिति पिंडवाडा

॥ श्री शङ्खेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

॥ श्री आत्म-कमल-वीर-दान-प्रेम-हीरसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमः ॥

भारतीय प्राच्य तत्त्व प्रकाशन समिति पिंडवाडा संचालितायां

आचार्यदेव श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरकर्मसाहित्यजैनग्रन्थमालायां

एकोनचत्वारिंशो (३९) ग्रन्थः

कर्मसाहित्ये निष्णाताः प्रेरका मार्गदर्शकाः संशोधकाश्च

सिद्धान्तमहोदधय आचार्यभगवन्तः

श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वराः

卐

गणिवर्यश्रीवीरशेखरविजयनिर्मिता

स्वोपज्ञ-

प्रेमप्रभावृत्तिसुशोभिता

भवस्थितिः (२)

दशपरिशिष्टपरिकलिता

प्रकाशिका—भारतीय-प्राच्य-तत्त्व-प्रकाशन-समिति, पिण्डवाडा ।

प्रथम आवृत्तिः-
प्रति ५००

राजसंस्करण-७) रु०

वीर संवत् २५१३
विक्रम संवत् २०४३

* प्राप्तिस्थान *

भारतीय-प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन-समिति
C/o रमणलाल लालचंद शाह
१३५/१३७ झवेरी बाजार, बम्बई २

•

भारतीय-प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन-समिति
C/o शा. समरथमल रायचंदजी
पिंडवाड़ा (राज०)
स्टे. सिरोही रोड (W. R.)

•

भारतीय-प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन-समिति
शा. रमणलाल वजेचन्द,
C/o दिलीपकुमार रमणलाल
मस्कती मार्केट,
अहमदाबाद २.

•

मुद्रक—
ज्ञानोदय प्रिंटिंग प्रेस, पिंडवाडा
स्टे.-सिरोहीरोड (W. R.)

मूलग्रन्थकृद् वृत्तिग्रन्थकृत्सम्पादकश्च

卐

प्रवचनकौशल्याधार-सिद्धान्तमहोदधि-सुविशालगच्छाधिपति-
परमशासनप्रभावक-कर्मसाहित्यनिष्णात-परमपूज्य-स्वर्गता-
ऽऽचार्यदेवेशश्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरविनीताऽन्तेवासि-
निःस्पृहशिरोमणि-गीतार्थमूर्धन्य-परम-पूज्या-ऽऽ
चार्यदेव-श्रीमद्विजयहीरसूरीश्वरशिष्य
गणिवर्यश्रीललितशेखरविजयशिष्य-
गणिवर्यश्रीराजशेखरविजय-
शिष्यः

गणिवर्यश्रीवीरशेखरविजयः

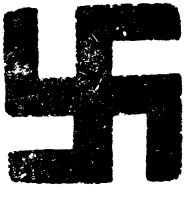

First Edition copies 500 | DELUXE EDITION RS. 7 | A.D. 1987

1. Bharatiya Prachya Tattva Prakashana Samiti,
C/o. Shah Ramanlal Lalchand,
135/137 Zaveri Bazzar
BOMBAY - 400 002
(INDIA)

2. Bharatiya Prachya Tattva Prakashana Samiti
C/o. Shah Samarathmal Raychandji,
PINDWARA, 307022 (Raj.)
(INDIA)

3. Bharatiya Prachya Tattva Prakashana Samiti
Shah Ramanlal Vajechand,
C/o Dilipkumar Ramanlal,
Maskati Market,
AHMEDABAD-380002
(INDIA)

Printed by :-
Gyanodaya Printing Press
PINDWARA. (Raj.)
St. Sirohi Road, (W.R.)
(INDIA)

Acharyadeva-Shrimad-Vijaya-Premasurishwarji
Karma-Sahitya-Granthmala

GRANTH NO. 39

BHAVASTHITIHI [2]

Along with **PREMA PRABHA** Vrutti

WITH TEN APPENDICES

By

GANIVARYA SHRI

VEERSHEKHAR VIJAYA MAHARAJA

卐

Inspired and Guided by

His Holiness Acharya Shrimad Vijaya

PREMASURISHWARJI MAHARAJA

the leading authority of the day

on Karma Philosophy.

Published by–

Bharatiya Prachya Tattva

Prakasbana Samiti, Pindwara (INDIA)

❀ प्रकाशकीय निवेदन ❀

हमें यह निवेदन करते हुए अपरिमित हर्ष की अनुभूति हो रही है कि सन् १९६६ में अहमदाबाद में हमारी भारतीय प्राच्य-तत्त्व प्रकाशन समिति द्वारा सर्व प्रथम तत्प्रकाशित कर्म साहित्य के आद्य दो ग्रन्थरत्नों का विशाल कुंकुमपत्रिका, अनेकविध पत्रिकाओं और पुस्तिकाओं आदि के द्वारा अत्यन्त विराट्काय एवं भव्य समारोह में विमोचन किया गया था। उस अवसर पर दोनों ग्रन्थरत्नों को गजराज पर विराजमान कर, विराट मानव समुदाय के साथ, अनेकानेक साजों से अलंकृत बडा भारी जुलूस निकाला गया था। सिद्धराज जयसिंह ने सिद्धहेम व्याकरण का भव्य जुलूस निकाला था, उसके बाद सम्भवतः यही सर्वप्रथम साहित्य-प्रकाशन का ऐसा भव्य जुलूस होना चाहिये। इन प्रकाशनों के उपलक्ष में प्रकाश हाई स्कूल में विशाल पैमाने पर प्राचीन तथा अर्वाचीन जैन साहित्य की विविध सामग्री की पृथक्-पृथक् विषयान्तर्गत एक भव्य एवं विराट् प्रदर्शनिका भी आयोजित की गयी थी एवं प्रबल जनाग्रह के कारण प्रदर्शनिका की अवधि दो तीन दिनों के लिए बढानी पडी थी। जुलूस के उपरान्त प्रकाश हाई स्कूल के विशाल प्रांगण में सुशोभित मंडप

में चतुर्विध संघ की प्रचुर उपस्थिति में नानाविध कार्यक्रमों के साथ ग्रन्थरत्नों का विमोचन किया गया, जिससे सामान्य जनता एवं बुद्धिजीवी लोग प्रचुररूपेण जैन साहित्य की ओर आकृष्ट हुए, जैन साहित्य के दर्शन से भी लोग प्रभावित हुए तथा उक्त समिति के सदस्यों में भी अपूर्व उत्साह, ओज व उमंग का संचरण हुआ।

अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप स्वर्गीय परम पूज्य आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वर महाराज साहब से प्रेरित कर्मसाहित्य के २५ ग्रन्थ आज तक तैयार हो गये हैं तथा और भी तैयार हो रहे हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी अर्वाचीन एवं प्राचीन छोटे बडे लगभग २५ से ३० ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। बन्धविधान महाशास्त्र के सभी भाग मुद्रित होने से सम्पूर्ण बन्धविधान सटीक मुद्रित हो चुका है एवं आज आपके कर कमलों में 'भवस्थितिः (२)' का मुद्रण समर्पित कर रहे हैं।

इसके साथ ही सत्ताविधान महाग्रन्थ के 'भाष्य-चूर्णि-वृत्तियुता मूलप्रकृतिसत्ता' और उनका 'पूर्वार्धः', 'उत्तरार्धः' तथा 'आद्यतृतीयांशः' 'भाष्ययुता मूलप्रकृतिसत्ता' 'चूर्णियुता मूलप्रकृतिसत्ता' मूलप्रकृतिसत्ता' 'कर्मप्रकृतिकीर्तनम्' 'मार्गणाः' 'जीवभेदप्रकरणम्' 'कायस्थिति-भवस्थितिप्रकरणम्' 'द्रव्य-

परिमाणम् (१)' 'द्रव्यपरिमाणम् (२)' 'क्षेत्रस्पर्शना-प्रकरणम्' 'भवस्थितिः (१)' 'प्रकरणानि' आदि का भी मुद्रण हम आपके कर कमलों में प्रस्तुत कर रहे है।

इससे पूर्व भी हमारी संस्था द्वारा **'प्राचीनाः चत्वारः कर्मग्रन्थाः' 'सप्ततिका नामनो छट्ठो कर्मग्रन्थ' '१ थी ५ कर्मग्रन्थ'** आदि छोटे बडे ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए हैं।

आज तक इस समिति द्वारा प्रकाशित किये गये समस्त ग्रन्थरत्नों की आधार शिला दिवंगत परम पूज्य आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजय **प्रेमसूरीश्वर महाराज साहब** हैं, जिनकी सतत सत्प्रेरणा, मार्गदर्शन, प्रस्तुत साहित्य का उद्धार करने की अदम्य उत्कंठा और कालोचित अथक परिश्रम से ही प्रस्तुत ग्रन्थरत्नों का जन्म हुआ है तथा इन्हीं महापुरुष के शुभाशीर्वाद से हम ग्रन्थरत्नों के प्रकाशन के महत्कार्य में उत्तरोत्तर साफल्य की ओर पदार्पण कर रहे हैं। इन्हीं महात्मा ने हमारी संस्था को कर्मसाहित्य के इन ग्रन्थरत्नों के प्रकाशन का लाभ देकर अनुगृहीत किया। अतः हम इनके ऋणी है और इस ऋण से कभी भी उऋण नहीं हो सकते। अतः ऐसे परमोपकारी महाविभूति आचार्य भगवन्त श्रीमद् **विजयप्रेमसूरीश्वर** महाराज साहब का हम नतमस्तक कोटि-कोटि वन्दन करते हुए, इनके प्रति अवर्ण्य आभार प्रदर्शित कर रहे हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थरत्न के प्रणेता परम पूज्य गणिवर्य श्री **वीरशेखरविजय महाराज साहब का** हम सवन्दन आभार मानते हैं। आपके अथक, अविरत, अविरल, एवं सतत परिश्रम के फलस्वरूप ही हम इस ग्रन्थरत्न को पाठकों के करकमलों में समर्पित करने में सक्षम रहे हैं।

मुद्रण करने में संस्था के निजी ज्ञानोदय प्रिन्टिंग प्रेस **के मेनेजर श्रीयुत शंकरदास** एवं उनके **अन्य कर्मचारी गण** भी धन्यवाद के पात्र हैं।

इसके अतिरिक्त जिस किसी ने भी जिस किसी भी तरह से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से ग्रन्थ-प्रकाशन में सहायता की हो, उन सभी महानुभावों के प्रति हम अपना हार्दिक आभार प्रदर्शित करते हैं।

द्रव्यसहायक-शा. मूलचन्दजी दलीचन्दजी सुपुत्र नेमीचन्द, कुन्दनमल, वृद्धिचन्द पौत्र किशोरकुमार, अशोककुमार, हरेशकुमार, अलकेश, प्रपौत्र लालु, मितेश (पिंडवाडा निवासी) ने श्रुतभक्ति से अनुप्रेरित एवं अनुप्राणित होकर इस ग्रन्थरत्न के मुद्रण में द्रव्यराशि के सम्यक् सहयोग से यथोचित योगदान किया है, अतः हम इनके प्रति ऋणी एवं आभारी हैं।

नजदीक भविष्य में और प्रकाशन की आशा में

भवदीय—

(i) पिंडवाडा
स्टे. सिरोहीरोड (राजस्थान) शा. समरथमल रायचन्दजी (मंत्री)

(ii) १३५/१३७ जौहरी
बाजार बम्बई–२ शा. लालचन्द छगनलालजी (मंत्री)

भारतीय-प्राच्य-तत्त्व प्रकाशन समिति

❀ समिति का ट्रस्टी मंडल ❀

(१) शेठ रमणलाल दलसुखभाई (प्रमुख) खंभात
(२) शा. खूबचंद अचलदासजी पिंडवाडा
(३) शा. समरथमल रायचन्दजी मंत्री पिंडवाडा
(४) शा. लालचंद छगनलालजी मंत्री पिंडवाडा
(५) शेठ रमणलाल वजेचन्द अहमदाबाद।
(६) शा. हिम्मतमल रुगनाथजी वेडा
(७) शेठ जेठालाल चुनीलाल घीवाले बम्बई
(८) शा. जयचन्द भबुतमलजी पिंडवाडा

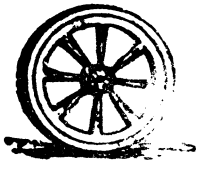

भवस्थिति (२) सत्कं शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
२	१०	०पार्श्व'	पार्श्व'
२	१२	हादयप्रह्लद०	हृदयप्रह्लाद०
४	५	हितार्थं	हितार्थं
४	२०	०तुप्कम्	०तुष्कम्
५	९	क्षूल्ल.	क्षुल्ल०
६	६	भेदैः	भेदैः
६	८	काय	काय-
६	१४	यैव	यैव
७	५	०माणि-	०माणि
७-	१०	विंशत्ये०	विंश-त्ये०
८	१	०स्यितिः	०स्थितिः
८	७	,	,,
८	८	०माइ	०माइं
९	३९	,	,,
९	१३	०वीस	०वीसं
१०	३/९	पल्लं	पल्लं,
११	८	द्वयो	द्वयो-
१२	१	१२ [	१२]
१२	८	०न्द्रिय	०न्द्रिय-
१३	२०	०सह-स्त्रा०	०सहस्रा०
१५	१३	काल	कालं
१५	१४	तेइं दि०	तेइंदि०
१५	१७	छम्म सा"	छम्मासा"
१५	१८	(सू	(सू०
१५	२२	द्वदाश०	द्वादश०
१५	२८	पत्र	पत्र०

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१७	१२	११२	१७२
१७	१७	यथाक्त०	यथोक्त०
१७	२३	पयाप्त०	पर्याप्त०
१६	१८	oपूर्वाधेन	०पूर्वार्धेन
२०	१३	oर: प०/० वर्ष०	०रःप०/वर्ष०
२०	२३	oद्रिय०	०न्द्रिय०
२१	४	०धार्ण०	०धारण०
२१	६	०माणं।	०माणं।
२४	१०	०यण०	०य-ण०
२४	२३	oअपु०	०अणु०
२७	५	सूचिः-	सूचिः-
२८	१६	एकेद्रियः	एकेन्द्रियः
३०	७	सर०	सुर०
३०	२१	सुरौध,	सुरौघ०,
३०	२२	स०/ध्वं	सा०/ध्वं,
३१	१३	ए ३/बा.,	ए०३/बा०
३१	१७	अप्,	अप्.,

विषयानुक्रमणिका

भवस्थितिः -(२) १-३२

विषयाः		पृष्ठाङ्काः
वृत्तिकृन्मङ्गलश्लोकादि		१
मूलग्रन्थारम्भमङ्गलादिचतुष्कसूचिकाऽऽद्यगाथा		२
मङ्गलादिचतुष्कम्		२-४
ओघतो जघन्योत्कृष्टभवस्थितिः		५
आदेशतो जघन्योत्कृष्टभवस्थितिः		५-२१
सर्वनरकदेवद्विविधभवस्थितिः	(३८)	५-१०
शेषमार्गणाजघन्यभवस्थितिः	(७५)	११
शेषमार्गणोत्कृष्टभवस्थितिः	(७५)	१२-२१
तिर्यग्गत्योघादीनाम्	(७)	१२-१३
एकेन्द्रियौघादीनाम्	(६)	१३-१४
द्वीन्द्रियौघादीनाम्	(६)	१५
अप्कायौघादीनाम्	(६)	१६-१७
वनस्पतिकायौघादीनाम्	(३)	१८
पञ्चेन्द्रियौघादीनाम्	(७)	१९
स्त्रीवेदस्य	(१)	१९-२०
असंज्ञिनः	(१)	२०
शेषपञ्चत्रिंशतः	(३५)	२०-२१
भवस्थितिग्रन्थोपसंहारः		२२-२३
प्रक्षान्तरपरिशिष्टानि		२४-३१
प्रथमपरिशिष्टे मूलगाथाः		२४
द्वितीयपरिशिष्टे मूलगाथाद्यांशाः		२५
तृतीयपरिशिष्टे साक्षिग्रन्थाः		२५
चतुर्थपरिशिष्टे साक्षिग्रन्थकाराः		२६

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
पञ्चमपरिशिष्टे-ऽतिदिष्टग्रन्थाः	२६
षष्ठपरिशिष्टे-ऽतिदिष्टग्रन्थकारः	२६
सप्तमपरिशिष्टे व्याकरणसूत्राणि	२७
अष्टमपरिशिष्टे न्यायाः	२७
नवमपरिशिष्टे भवस्थितिसत्क-	
५ मूलमार्गणोत्तर ११३ भेदप्रदर्शियन्त्रम्	२८-२९
दशमपरिशिष्टे जघन्योत्कृष्टभवस्थितिप्रदर्शियन्त्रम	३०-३१
उपसंहारः	३२

अथ

गणिवर्यश्री-
वीरशेखरविजयनिर्मिता
स्वोपज्ञ-
प्रेमप्रभावृत्तिसुशोभिता
भवस्थितिः (२)
दशपरिशिष्टपरिकलिता

-: अर्घ्याञ्जलि :-

जिन्होंने' भवरूपी कूपसे संयमरूपी रज्जु द्वारा बाहर
निकाला । और प्रव्रज्यादिन से लेकर बारह साल तक
निजी निश्रा में रख कर ग्रहण शिक्षा और आसे-
वन शिक्षा के साथ साथ ही संस्कृत-प्राकृतव्या-
करण न्याय दर्शन तर्क काव्य कोश छन्द
अलङ्कार प्रकरण आगम छेदादि
विविधविषयक शास्त्रों के परि-
शीलन द्वारा सुधारस
पीलाया ।

जिन्होंकी सतत सत्प्रेरणा और कृपादृष्टिसे ही महा-
गंभीर और अतिभगीरथ ऐसे कर्मसाहित्य के नव
निर्माण में और सम्पादन में तथा प्राचीन कर्म-
साहित्य के सम्पादन आदि में आज लगातार
२७ साल तक प्रयत्नशील रहा हुं ।

उन कर्मसाहित्य के सूत्रधार सिद्धान्तमहोदधि सच्चारित्र-
चूडामणि परमशासनप्रभावक सुविशालगच्छाधि-
पति परमाराध्यपाद स्वर्गीय-

आचार्य भगवंत-

श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराजा

की परम पवित्र स्मृति में

भवदीय कृपैककाङ्क्षी
मुनिवीरशेखरविजय गणी

सकलागम रहस्यवेदि सूरिपुरन्दर
बहुश्रुत गीतार्थ – परज्योतिर्विद् परमगुरूदेव

परम पूज्य आचार्य देवेश श्रीमद्
विजय दान सूरीश्वरजी महाराजा

कर्म साहित्य ग्रंथोना प्रेरक, मार्गदर्शक अने संशोधक
सिध्धान्त महोदधि सुविशाल गच्छाधिपति
कर्मशास्त्र रहस्यवेदी शासन शिरछत्र

स्व. परम पूज्य आचार्य देव श्रीमद्
विजय प्रेम सूरीश्वरजी महाराजा

ં:સ્પૃહ શિરોમણિ ગીતાર્થ મૂર્ધન્ય

ગચ્છહિત ચિંતક

વ: પરમ પૂજ્ય આચાર્યદેવ શ્રીમદ્

જય હીર સૂરીશ્વરજી મહારાજા

॥ श्री शङ्खेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

॥ श्री आत्म-कमल-वीरेन्द्र-प्रेम-हीरसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमः ॥

मुनिश्रीवीरशेखरविजयनिर्मिता

स्वोपज्ञ-

प्रेमप्रभावृत्तिसुशोभिता

भवस्थितिः

प्रेमप्रभावृत्तिः—

दर्शितसकलजगज्जन-भवस्थितिभ्रम-भवस्थितिविनाशिम् ।
श्रीवीरतीर्थनाथं, नौमि सुरासुरनरनतांहिम् ॥ १ ॥

वीराज्ञिपदीं प्राप्य, श्रुतनिधिमिद्वादशाङ्गय उदिता यैः ।
तान् गौतमादिगणधर-भगवत एकादश स्तौमि ॥ २ ॥

यस्या-ऽस्त्यमृतमङ्गुष्ठे, यो-ऽनेकलब्धिसंभृतः ।
अभीष्टफलस्य दायं तं, स्मरामि गौतमं गुरुम् ॥ ३ ॥

वन्दे गणधरगुम्फित-मागममर्हदुदितं शिवैकपथम् ।
सप्तनयसप्तभङ्गी-निक्षेपचतुष्कसंकलितम् ॥ ४ ॥

श्रीशारदां हृदि स्मृत्वा, गुरुं नत्वा श्रुतोदधेः ।
कुर्वे प्रेमप्रभावृत्तिं, स्वोपज्ञाया भवस्थितेः ॥ ५ ॥

एतर्हि शिष्टजनसमयपरिपालनाय प्रारम्भेऽभीष्टदेवता-स्तुत्यादिरूपमङ्गलादिचतुष्कसूचिकां पद्यार्यां निबध्नाति ग्रन्थकारः—

खविअभवठिइसिरिमुहरि—

पासं पणमिअ हियत्थमत्तसुया ।

वोच्छं भवठिइमोहे,

गइइंदियकायवेअसण्णीसुं ॥१॥ (गीतिः)

(प्रे०) "खविअ०" इत्यादि, 'क्षपितभवस्थितिश्री-मुहरिपार्श्वं' मुहरौ=मुहरिसंज्ञके तीर्थे स्थितः पार्श्वः=त्रयो-विंशतितमो जिनेश्वरो मुहरिपार्श्वः, श्रिया=निखिलत्रिलोकी-जनानां चित्तचमत्कारोत्पादिन्या हृदयप्रह्लादकारिण्या परमा-र्हन्त्यमहाप्रभावप्रकटकारिण्या-ऽष्टमहाप्रातिहार्यादिसंपदा चतु-स्त्रिंशदतिशयशोभया समग्रलोकालोकाखिलभावप्रत्यक्षकारि-केवलज्ञानलक्ष्म्या वा संयुतो मुहरिपार्श्वः श्रीमुहरिपार्श्वः, क्षपिता=विनाशिता भवस्य=संसारस्य नरकादिगतिरूप-स्य=नारकादिभवलक्षणसंसारसम्बन्धिनीति यावत् स्थितिः= वासो येन स क्षपितभवस्थितिः, स चासौ श्रीमुहरिपार्श्वः क्षपितमुहरिपार्श्वस्तम्, क्षपितभवस्थितिश्रीमुहरिपार्श्वं 'प्रणम्य'

प्रकर्षेण त्रिकरणयोगेन नत्वा=प्रणिपातं विधाय "प्राक्काले" (सि० ५-४-४७) इत्यनेन व्याकरणसूत्रेण प्राक्कालार्थे क्त्वा-प्रत्ययस्य विधीयमानत्वेनोत्तरक्रियामापेक्षत्वादुत्तरक्रियामाह-"वोच्छं" 'वक्ष्ये' भणिष्यामि=शब्दतो निरूपणाविषयी-करिष्यामीति यावत् ।

किम् ? इत्यत आह- "**भवठिइं**" ति 'भव-स्थितिं' भवस्य=नरकगत्यादिपर्यायरूपस्य भवे वा= नैरयिकादिपर्यायरूपे स्थानं स्थितिः=जघन्योत्कृष्टावस्थान-कालात्मिका भवस्थितिः=नरकगत्याद्यन्यतरैकभवसत्कजघन्यो-त्कृष्टकालावस्थानलक्षणा, ताम् , भवस्थितिम्=एकभवजघन्यो-त्कृष्टायूरूपाम् ।

कुत्रेत्यत आह-"**ओहे गइइंदियकायवेअ-सण्णीसु**" ति 'ओघे गतीन्द्रियकायवेदसंज्ञिषु' ओघे=नरक-गत्यादिमार्गणाविशेषं विना सामान्यतः प्ररूपणायां तथा विशेषतो गतीन्द्रियकायवेदसंज्ञिरूपमूलमार्गणापञ्चकसत्क-त्रयोदशाधिकशतोत्तरमार्गणाभेदेष्विति ।

ननु किं स्वशक्तिसामर्थ्येन स्वमनसा वक्ष्य उता-ऽन्यथेत्यत आह-"**अत्तसुया**" त्ति, 'आप्तश्रुतात्' "गम्ययपः कर्माधारे" (सि.२-२-७४) इति व्याकृतिवचनेना-ऽऽप्तश्रुतमाश्रित्य, न पुनः स्वतन्त्रतया स्वशक्तिप्रभावेन स्वमनीषिकयेति यावत् अनेन च ग्रन्थकृता स्वस्योद्धतत्वं

निराकृतम्, स्वल्पघुता च प्रदर्शिता, ग्रन्थस्याऽऽदरणीयता चाऽऽविष्कृता ।

किमर्थमित्यत आह–"हियत्थं"ति 'हितार्थं हिताय= मोक्षाय हितार्थं स्वपरयोरित्याक्षिप्यते ततः स्वपरकल्याणार्थम् ।

तदेवं ग्रन्थकृता मङ्गलादिचतुष्कं प्रदर्शितम् । तद्यथा– "खविअभवठिइसिरिमुहरिपासं पणमिअ" इति गाथांशेन परमाऽभीष्टदेवताप्रणतिलक्षणमेकान्तिकमात्यन्तिकञ्च भावमङ्गलं प्रकटीकृतम्, "वोच्छं ...." इत्यादिगाथोत्तरार्धेनाऽभिधेयमभिव्यक्तीकृतम्, "अत्तसुया" इति पदेन श्रद्धानुसारिणः प्रति गुरुपर्वक्रमरूपः सम्बन्धः प्रादुष्कृतः तर्कानुसारिणः प्रति पुनरभिधेयाऽभिधायकरूपोऽनुक्तोऽपि गम्यत एव । "हियत्थं" इति पदेन च प्रयोजनमपि साक्षाद् व्यञ्जितम् । तथाहि–प्रयोजनं द्विविधम्, अनन्तर-परम्परविभागात्, तद् द्विविधमपि द्वैधम्, ग्रन्थनिर्मातृ-पठितृप्रकारात्, तत्र ग्रन्थनिर्मातुरनन्तरप्रयोजनं भव्यजन्तुप्रकृतग्रन्थबोधकारापणम्, ग्रन्थग्रन्थनरूपस्वाध्यायलक्षणाभ्यन्तरतपसा कर्मनिर्जरा वा, पठितुरनन्तरप्रयोजनं प्रकृतग्रन्थज्ञानम्, द्वयोरपि परम्परप्रयोजनं तु परमश्रेयःपदावाप्तिः ॥ १ ॥

॥ इति मङ्गलादिचतुष्कम् ॥

॥ अथौघतो जघन्योत्कृष्टभवस्थितिः ॥

अथ "यथोद्देशं निर्देशः" इति न्यायेनैकभवजघन्योत्कृष्टायुःप्रमाणात्मिकां भवस्थितिं प्ररूपयिषुरादौ तावत्तामोघतो जघन्योत्कृष्टभेदतो द्विविधामपि पथ्यार्यापूर्वार्धेन प्राह-

खुड्डभवोऽत्थि भवठिई, हस्सा तेत्तीससागरा जेट्ठा ।

(प्रे०) "**खुड्डभवो**" इत्यादि, ओघतः 'ह्रस्वा' जघन्या भवस्थितिः 'क्षुल्लकभवः' षट्पञ्चाशदधिकशतद्वयावलिकाप्रमितक्षुल्लकभवमाना-ऽस्ति, अपर्याप्ततिर्यग्मनुष्ययोर्जघन्यायुषस्तावन्मात्रत्वात् । 'ज्येष्ठा' उत्कृष्टा भवस्थितिः 'त्रयस्त्रिंशत्सागराः' त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणा भवति, सप्तमनरकाऽनुत्तरदेवयोरुत्कृष्टायुषस्तथात्वात् ।

॥ इत्योघतो जघन्योत्कृष्टभवस्थितिः ॥

॥अथा-ऽऽदेशतस्त्रयोदशोत्तरशतमार्गणानां भवस्थितिः॥

इदानीमादेशतो भवस्थितिं चिकथयिषुरादौ शेषगाथोत्तरार्धेन नरक-देवमार्गणाभेदानां द्विविधा-ऽपि तथा शेषमार्गणानां जघन्या भवस्थितिरतिदिश्यते—

सव्वणिरयदेवाणं,

दुहा-ऽत्थि कायठिइसमियराण लहू ॥ २ ॥ (गीतिः)

(प्रे०) "**सव्व०**" इत्यादि, 'सर्वनिरयदेवानां' नरकगत्योघ-रत्नप्रभा-शर्कराप्रभा-वालुकाप्रभा--पङ्कप्रभा-धूमप्रभातमःप्रभा-महातमःप्रभाभेदभिन्नानां सर्वेषामष्टसङ्ख्याकानां नरक-

मार्गणाभेदानां देवगत्योघ-भवनपति-व्यन्तर-ज्योतिष्क-सौधर्म-ईशान-सनत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्मलोक-लान्तक-शुक्र-सहस्रारा-ऽऽनत-प्राणता-ऽऽरण-ऽच्युतरूपद्वादशकल्पवासि-प्रथमादि-नवग्रैवेयक-विजय-वैजयन्त-जयन्ता-ऽपराजित-सर्वार्थसिद्धाख्य-पञ्चानुत्तरभेदैः सर्वसङ्ख्यया त्रिंशत्सुरमार्गणाभेदानां चेति मीलितानामष्टात्रिंशन्मार्गणाभेदानां 'द्विधा' जघन्योत्कृष्टभेद-भिन्ना द्विप्रकारा—ऽपि भवस्थितिः 'कायस्थितिसमा' काय स्थितिसमाना-ऽस्ति, एकभविकत्वेन तयोरैक्यात् ।

यदुक्तं जीवसमासे—

एक्केक्कभवं सुर-नारयाओ" (गा. २१३) इति ।

इदमुक्तं भवति—प्रस्तुतमार्गणानामेकभवतोऽधिकावस्थानाभावेन कायस्थिति-भवस्थित्योरैक्यमस्ति, तेन प्रोक्तमार्गणानां यैव कायस्थितिः सैव भवस्थितिः यैव भवस्थितिः सैव कायस्थितिर्भवति, ततो जघन्यकायस्थितिप्रमाणा जघन्यभवस्थितिरुत्कृष्टकायस्थितिप्रमाणोत्कृष्टभवस्थितिश्च भवति ।

कायस्थितिश्चा-ऽनेनैव ग्रन्थकारेण प्राक् सवृत्तिका भणिताऽस्ति ।

तदनुसारेण भवस्थितिरित्थं ज्ञेया-नरकगत्योघ-प्रथमनरकयोर्जघन्यभवस्थितिर्दशसहस्रवर्षाणि, द्वितीयादिसप्तमान्तानां नरकाणां निरयभेदानां जघन्यभवस्थितिः क्रमश एक-त्रि-सप्त-

दश-सप्तदश-द्वाविंशतिसागरोपमाणि भवति, नरकगत्योघस्योत्कृष्टभवस्थितिस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, प्रथमादिसप्तनारकाणां क्रमादेक-त्रि-सप्त-दश - सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि-भवति, देवौघ-भवनपति-व्यन्तरसुराणां जघन्यभवस्थितिर्दशसहस्रवर्षाणि, ज्योतिष्कदेवस्य पल्योपमाष्टभागप्रमाणा, सौधर्मादिद्वादशकल्पवासि - प्रथमादिनवग्रैवेयक - चतुरनुत्तरसुराणां जघन्यभवस्थितिः क्रमात् पल्योपम-साधिकपल्योपम--द्वि-साधिकद्वि-सप्त-दश-चतुर्दश-सप्तदशा-ऽष्टादशै-कोनविंशतिविंशत्येकविंशति-द्वाविंशति-त्रयोविंशति-चतुर्विंशति-पञ्चविंशति-षड्विंशति-सप्तविंश-त्यष्टाविंश-त्येकोनत्रिंश-त्त्रिंश- देकत्रिंशत्सागरोपमाणि भवति, सर्वार्थसिद्धसुरस्य जघन्यभवस्थितिर्नास्ति। उत्कृष्टभवस्थितिः पुनर्देवौघस्य पञ्चानुत्तरसुराणाञ्च त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, भवनपति-व्यन्तर-ज्योतिष्क-द्वादशसौधर्मादिकल्पवासि-प्रथमादिनवग्रैवेयकसुराणां क्रमशः साधिकैक-सागरोपम-पल्योपमा-ऽभ्यधिकपल्योपम-द्वि-साधिकद्वि-सप्ताऽभ्यधिकसप्त दश-चतुर्दश - सप्तदशा-ऽष्टादशै - कोनविंशतिविंशत्येकविंशति-द्वाविंशति-त्रयोविंशति-चतुर्विंशति-पञ्चविंशति-षड्विंशति-सप्तविंश-त्यष्टाविंश त्येकोनत्रिंश-त्त्रिंश-देकत्रिंशत्सागरोपमाणि भवति।

उक्तञ्च श्रीप्रज्ञापनासूत्रे चतुर्थे स्थितिपदे—

"नेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? गोयमा! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं। ...
रयणप्पभापुढविनेरइयाणं ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, सागरोवम । -
सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, एगं सागरोवमं , तिन्नि सागरोवमाइं।
वालुयप्पभापुढविनेरइयाणं ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, तिन्नि सागरोवमाइ ,, सत्त ,, ।....
पंकप्पभापुढविनेरइयाण ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, सत्त ,, ,, दस ,, ।
धूमप्पभापुढविनेरइयाणं ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, दस ,, ,, सत्तरस ,, ।....
तमप्पभापुढविनेरइयाणं ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, सत्तरस ,, ,, बावीसं ,, ।...
अहेसत्तमापुढविनेरइयाणं ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, बावीसं ,, ,, तेत्तीसं ,, ।...
देवाणं ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, दसवाससहस्साइं ,, ,, ,, ।
भवणवासीणं ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, साइरेगं सागरोवमं ।...
वाणमंतराणं भंते ! देवाणं ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, पलिओवमं ।...
जोइसियाणं देवाणं भंते! ,, ,, ,, ,, ,, ,, पलिओवमट्ठभागो ,, ,, वाससयसहस्समब्भहियं

सोहम्मे णं भंते! कप्पे देवाणं ,, ,, ,, ,, ,, ,, पलिओवमं ,, दो सागरोवमाइं। -
ईसाणे ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, साइरेगं ,, ,, साइरेगाइं दो ,,
सणंकुमारे ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, दो सागरोवमाइ ,, सत्त ,,
माहिंदे ,, ,, , ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, साइरेगाइं दो ,, ,, साइरेगाइं सत्त ,,
बंभलोए ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, सत्त ,, ,, दस ,,
लंतए ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, दस ,, ,, चउदस ,,

महासुक्के	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	चउदस	,, ,,	सत्तर	,,
सहस्सारे	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	सत्तर	,, ,,	अट्ठारस	,,
आणए	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	अट्ठारस	,, ,,	एगूणवीसं	,,
पाणए	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	एगूणवीसं	,, ,,	वीसं	,,
आरणे	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	वीसं	,, ,,	एक्कवीसं	,,
अच्चुए	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	एगवीसं	,, ,,	बावीसं	,,
हेट्ठिमहेट्ठिमगेविज्जगदेवाणं भंते!	,, ,, ,, ,, ,, ,,	बावीसं	,, ,,	तेवीसं	,,
,, मज्झिम	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	तेवीसं	,, ,,	चउवीसं	,
,, उवरिम	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	चउवीसं	,, ,,	पणवीसं	,,
मज्झिमहेट्ठिम	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	पणवीसं	,, ,,	छव्वीसं	,,
,, मज्झिम	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	छव्वीसं	,, ,,	सत्तावीसं	,,
,, उवरिम	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	सत्तावीसं	,, ,,	अट्ठावीसं	,,
उवरिमहेट्ठिम	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	अट्ठावीसं	,, ,,	एगूणतीसं	,,
,, मज्झिम	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	एगूणतीसं	,, ,,	तीसं	,,
,, उवरिम	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	तीसं	,, ,,	एक्कतीसं	,,
विजयवेजयंतजयंतअपराजितेषु णं भंते! देवाणं	,, ,, ,, ,, ,, ,,	एक्कतीसं	,, ,,	तेत्तीसं	,,
सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं	,, ,, ,, ,, ,, ,,	अजहन्नमणुक्कोसं		,,	,,

ठिई पन्नत्ता'' (प. ४, सू० ९४-९५-१००-१०१-१०२।भा० १, पत्र० १६८।२-१६९।१-१७०।२-१७४।२-१७६-१७७-१७८) इति ।

तथैव श्रीजीवसमासे-ऽपि गदितम्-

"एगं च तिण्णि सत्तय, दस सत्तरसेव हुंति बावीसा।
तेत्तीस उयहिनामा, पुढवीसु ठिई कमुक्कोसा ॥२०२॥
पढमादि जमुक्कोसं, बीयादिसु सा जहण्णिया होइ।
घम्माएँ भवणवंतर, वाससहस्सा दस जहण्णा ॥२०३॥
अमुरेसु सारमहियं, सड्ढं पल्लं दुवे य देसूणा।
नागाईणुक्कोसा, पल्लो पुण वंतरसुराणं ॥२०४॥
पल्लट्ठभाग पल्लं च साहियं जोइसे जहण्णियरं।
हेट्ठिल्लुक्कोसठिई, सक्काईणं जहण्णा सा ॥२०५॥
दो साहि सत्त साहिय, दस चउदस सत्तरेव अट्ठारा।
एकाहियाय एत्तो, सक्काइसु सागरुवमाणा ॥२०६॥" इति।

एवं जीवाजीवाभिगमसूत्र-तत्त्वार्थसूत्र-बृहत्संग्रहणी पञ्चसंग्रह-पञ्चसंग्रहमलयगिरिसूरिवृत्त्यादिष्वपि।

तत्त्वार्थसूत्र-तद्भाष्यप्रमुखाभिप्रायेण विजय-वैजयन्त-जयन्ता-ऽपराजितामिधानां चतुर्णां देवानामुत्कृष्टा भवस्थितिर्द्वात्रिंशत्सागरोपमप्रमाणा अवसातव्या।

प्रत्यपादि च श्रीतत्त्वार्थसूत्रे-

"आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धे च।" (अ.४,सू.३८।भा.१,पत्र०३११) इति।

तथैव तद्भाष्ये-ऽपि-"विजयादिषु चतुर्ष्वप्येकेना-ऽधिका द्वात्रिंशत्, सा-ऽप्येकेना-ऽधिका त्वजघन्योत्कृष्टा सर्वार्थसिद्धे त्रय-स्त्रिंशदिति।" (अ.४,सू.३८।भा.१,पत्र.३११) इति।

॥ अथा-ऽऽदेशतो जघन्यभवस्थितिः ॥

साम्प्रतं शेषमार्गणानां जघन्यभवस्थितिमाह—"**इय-राण**" इत्यादि, '"कायठिइसमा"' इति पदं तुलादण्डन्यायेनेहाऽपि सम्बध्यते ततः 'इतरासाम्' नरक-देवभेदानामष्टात्रिंशतोऽनन्तरमेव द्विविधाया अपि भवस्थितेः प्रतिपादितत्वात्तान् विहाय तिर्यग्गत्योघादीनां पञ्चसप्ततेः 'लघ्वी' जघन्या भवस्थितिः कायस्थितिसमा=कायस्थितितुल्या भवति, द्वयोरप्यैक्येन कस्या अपि विशेषाभावात् ॥२॥

अथोक्तार्थेऽतिप्रसङ्गं निवारयितुमिच्छुराह गाथापूर्वार्धम्—

णवरं अंतमुहुत्तं, थीए खुड्डगभवो णपुंसस्स ।

(प्रे०) "णवरं" इत्यादि, णवरं=केवलमयं विशेषः—'स्त्रियाः' स्त्रीवेदस्य जघन्या भवस्थितिरन्तमुंहूर्त्तम् , 'नपुंसकस्य' नपुंसकवेदस्य च क्षुल्लकभवो भवति, द्वयोरपि वेदयोर्जघन्याऽऽयुषस्तथात्वात् ।

अपवादबीजन्तु—स्त्रीवेदी नपुंसकवेदी वोपशमश्रेण्यामवेदी भूत्वा पतन्नेकसमयं सवेदी भूत्वा कालं कृत्वा देवलोके नियमतः पुरुषवेदित्वेनोत्पद्यते तदा स्त्रीवेद-नपुंसकवेदयोर्जघन्यकायस्थितिरेकसमयमाना प्राप्यते, भवस्थितेस्त्वेकभवसत्कायुर्वेदनरूपत्वेनैकभवजघन्यायूरूपत्वाद् द्वयोरपि वेदयोर्जघन्यभवस्थितिर्यथोक्तमाना भवति ।

॥ इत्यादेशतो जघन्यभवस्थितिः ॥

।। अथा-ऽऽदेशत उत्कृष्टभवस्थितिः ।।

इदानीं सार्धगाथापञ्चकेन शेषपञ्चसप्ततेर्मार्गणानामुत्कृष्ट-भवस्थितिं व्याहर्तुकाम आदौ शेषगाथोत्तरार्धेन तिर्यग्भेद-चतुष्कस्य मनुष्यभेदत्रिकस्य च तामाह—

गुरुभवठिई तिपल्ला, तिरितिपणिंदितिरियणराण ।३

(प्रे०) "गुरु०" इत्यादि, 'तिर्यक्त्रिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्नरा-णाम्' तिर्यक्सामान्य-पञ्चेन्द्रियतिर्यगोघ-पर्याप्तपञ्चेन्द्रिय तिर्यक्-तिरश्ची-मनुष्यौघ-पर्याप्तमनुष्य-मानुषीरूपाणां सप्तानां मार्गणानां 'गुरुभवस्थितिः' ज्येष्ठा भवस्थितिः 'त्रिपल्याः' त्रीणि पल्योपमानि भवति, युगलिकतिर्यग्मनुष्ययोरुत्कृष्टत एकस्मिन् भवे यथोक्तकालं यावदवस्थानात्, यथासंभवं च युगलिकतिर्य-ग्मनुष्यापेक्षयैव प्रकृतज्येष्ठभवस्थितेरुक्तमार्गणासु सम्भवात् ।

यदुक्तं श्रीजीवसमासे—'नरतिरियाणं तिपल्लं च ।।२०८।।" इति । **तथा श्रीजीवाजीवाभिगमे**—"तिरिक्ख-जोणियाणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं । एवं मणुस्साणं वि ।" (प्रति. ३, सू.२२२/पत्र. ४०६/२) इति । एवं **श्रीप्रज्ञापनादिष्वपि** । न च **श्रीप्रज्ञापनासूत्रे** पर्याप्त-पञ्चेन्द्रियतिर्यक्-पर्याप्तमनुष्ययोरुत्कृष्टभवस्थितिरन्तर्मुहूर्तोन-पल्योपमत्रयमाना भणिता, इह पुनः सम्पूर्णपल्योपमत्रय-प्रमाणा, ततः **श्रीप्रज्ञापनया सहास्य ग्रन्थस्य** कथं न विरोधः ? इत्याशङ्कनीयम्, यतो विवक्षाभेदेनोभयत्र भिन्नोक्तेरविरोधो वर्तते । तद्यथा—**श्रीप्रज्ञापनासूत्रे** करण-पर्याप्तान् जीवान् प्रतीत्य प्रस्तुता गुरुभवस्थितिः प्रतिपादिता,

तेन तत्र करणापर्याप्तसत्केनान्तर्मुहूर्तेनोना भणिता, इह पुनः पर्याप्तनामकर्मोदयवतो लब्धिपर्याप्तानाश्रित्य प्रोक्ता, तेनात्र यथोक्तमाना गदिता । इत्थं चात्र विवक्षाभेद एव, न पुनर्मतान्तरं विरोधो वा । एवमन्यत्रा-ऽपि ज्ञेयम् ॥३॥

इदानीमेकेन्द्रियौघादिमार्गणाषट्कस्योत्कृष्टभवस्थिति-रेकया पथ्यार्यया निगद्यते—

एगिंदिय-पुहवीणं, वरिससहस्साणि होइ बावीसा ।
सा चेव होइ तेसिं, बायर-बायरसमत्ताणं ॥ ४ ॥

(प्रे०)"एगिंदिय०"इत्यादि,'एकेन्द्रियपृथिव्योः'एकेन्द्रि-यौघ-पृथिवीकायौघयोरुत्कृष्टा भवस्थितिर्द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि भवति, 'तेषां बादरबादरसमाप्तानां' तच्छब्दस्य पूर्ववस्तु-परामर्शित्वात्समाप्तशब्दस्य पर्याप्तपर्यायत्वाच्च बादरैकेन्द्रिय-पर्याप्तबादरैकेन्द्रिय-बादरपृथ्वीकाय-पर्याप्तबादरपृथ्वीकायाना-मुत्कृष्टभवस्थितिः 'सा चेव' अनन्तरोक्तैकेन्द्रियौघ-पृथ्वी-कायौघज्येष्ठभवस्थितिप्रमाणैव द्वाविंशतिसहस्रवर्षाणि भवति, इहैकेन्द्रियभेदत्रयस्योत्कृष्टा भवस्थितिः पृथ्वीकायिकापेक्षया ज्ञातव्या, शेषाणामप्कायिकादीनां ज्येष्ठभवस्थितेः स्तोकत्वात् । **तथा श्रीपञ्चसंग्रहमलयगिरिसूरिवृत्तावपि भणितम्—**

'तत्र पर्याप्तबादरैकेन्द्रियाणां द्वाविंशतिवर्षसह-स्राण्युत्कृष्टा भवस्थितिः, सा च बादरपृथ्वीकायैकेन्द्रियापेक्षया द्रष्टव्या, न शेषै-केन्द्रियापेक्षया, शेषैकेन्द्रियाणामेतावत्या भवस्थितेरभावात्" (द्वा.२.गा.३५/भा.१,पत्र.७०-२) इति ।

तत्र च पृथिवीकायसामान्य–बादरपृथिवीकाययोर्यथोक्तमाना ज्येष्ठा भवस्थितिः **श्रीप्रज्ञापनादिग्रन्थेषूदिता । तथा चोक्तं श्रीप्रज्ञापनासूत्रे चतुर्थे स्थितिपदे–** "पुढविकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं ... - बायरपुढविकाइयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं" (सू०९६/भा.१,पत्र.१७१-२) इति ।

पृथ्वीकायिकौघ-बादरपृथ्वीकायिकयोरुक्तप्रकृष्टकायस्थितिर्हि पर्याप्तबादरपृथिवीकायिका-ऽपेक्षया सम्भवति, अपर्याप्तबादरपृथ्वीकायिकस्योत्कृष्टभवस्थितेरप्यन्तर्मुहूर्तमात्रस्थितिकत्वात् ।

तेन पर्याप्तबादरपृथिवीकायस्य ज्येष्ठभवस्थितिः सहस्रवर्षाणां द्वाविंशतिर्भवति ।

उक्तञ्च श्रीमलयगिरिसूरिपादैः पञ्चसंग्रहवृत्तौ–

"तथाहि-उत्कृष्टा भवस्थितिर्बादरपर्याप्तपृथिवीकायिकानां द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि"(द्वा.२, गा. ३५।भा.१, पत्र० ७०–२) इति ।

तदेवं दर्शितनीत्या षण्णामप्येकेन्द्रियौघादीनामुत्कृष्टभवस्थितिर्द्वाविंशतिसहस्रवर्षप्रमाणा संगच्छति । यद्यपि **श्रीप्रज्ञापनायां** पर्याप्तबादरपृथिवीकायिकस्य गुरुभवस्थितिरन्तर्मुहूर्तोनद्वाविंशतिसहस्रवर्षमाना भणिता, तथा-ऽपि सा विवक्षाभेदेन द्रष्टव्या, एतच्च प्रागेव पर्याप्ततिर्यक्पञ्चेन्द्रियभवस्थितिनिरूपणावसरे स्पष्टीकृतम् ॥४॥

एतदर्थैकया गाथया द्वीन्द्रियौघादीनां षण्णां प्रकृष्टां भवस्थितिं प्रतिपादयितुकाम आह–

बेइंदियाइगाणं कमसो बारह समा अउणवण्णा।
दिवसा तह छम्मासा, तप्पज्जत्ताण एमेव ॥५॥

(प्रे०) "**बेइंदियाइगाणं**" इत्यादि, 'द्वीन्द्रियादिकानां' द्वीन्द्रिय आदौ येषाम्, ते द्वीन्द्रियादिकाः "शेषाद्वा' (सि० ७।३।१७५) इत्यनेन वैकल्पिकः कच्प्रत्ययः, तेषां द्वीन्द्रियादिकानां=द्वीन्द्रियसामान्य- त्रीन्द्रियसामान्य-चतुरिन्द्रियसामान्यानामित्यर्थः क्रमशो द्वादश समाः' वर्षाणि, एकोनपञ्चाशद्दिवसास्तथा षण्मासाः। द्वीन्द्रियौघस्योत्कृष्टा भवस्थितिर्द्वादश वर्षाणि, त्रीन्द्रियौघस्यैकोनपञ्चाशदहोरात्राणि, चतुरिन्द्रियौघस्य च षण्मासा भवति।

तथा चोक्तं श्रीप्रज्ञापनायां चतुर्थे स्थितिपदे- 'बेइंदियाणं भंते! केवइयं काल ठिई पन्नत्ता? गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बारस संवच्छराइं ...... तेइंदियाणं भंते! केवइयं काल ठिई पन्नत्ता? गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं एगुणवन्नं राइंदियाइं ... चउरिंदियाणं भंते! केवइयं काल ठिई पन्नत्ता?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं छम्मासा" (सू ९७ भा. १, पत्र.१७२-२) इति। **एवं जीवसमासाद्यन्यत्रा-ऽपि। तथा च श्रीजीवसमासः-**

"बारस अउणापन्नं छप्पिय वासाणि **दिवसमासा य।**
बेइंदियाइयाणं" (गा. २०८) **इति।**

"**एवं**" एवंशब्दस्य साम्यार्थकत्वाद् द्वादशवर्षैकोनपञ्चाशद्दिवसषण्मासा यथासंख्यं '**तत्पर्याप्तानाम्**' तच्छब्दस्य पूर्वप्रकान्तपरामर्शकारित्वात् पर्याप्तानां द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियाणां गुरुभवस्थितिर्ज्ञेया। **यदुक्तं श्रीपञ्चसंग्रहवृत्तौ-** "तथा पर्याप्तद्वीन्द्रियाणामुत्कृष्टा भवस्थितिर्द्वादश वर्षाणि पर्याप्तत्रीन्द्रियाणामेकोनपञ्चाशद्दिवसाः। पर्याप्तचतुरिन्द्रियाणां षण्मासाः" (द्वा. २, गा. ३५। भा. १, पत्र.७०-२) इति ॥५॥

अधुनैकगाथया-ऽप्कायिकौघादीनां नवानां ज्येष्ठा-भवस्थितिरुच्यते–

दगवाऊणं कमसो, वाससहस्साणि सत्त तिण्णि भवे ।
तिदिणा-ऽग्गिस्सेवं सिं, बायर-बायरसमत्ताणं ॥ ६॥

(प्रे०)"दगवाऊणं" इत्यादि, 'दकवाय्वोः' अप्कायौघ-वायुकायौघयोः प्रकृष्टा भवस्थितिः क्रमशः सप्त वर्षसहस्राणि त्रीणि वर्षसहस्राणि च भवेत् । अप्कायिकसामान्यस्य सप्त सहस्रसंवत्सराणि, (७०००) वायुकायिकसामान्यस्य च त्रि-सहस्राब्दानि (३०००) ज्येष्ठा भवस्थितिर्भवति । उक्तञ्च श्रीप्रज्ञापनायां चतुर्थपदे —"आउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं,—....वाउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि वास-सहस्साइं,"(सू.९६/भा.१, पत्र.१७१/२-१७२/१)इति ।

'तिदिणा" इत्यादि,'अग्नेः' तेजस्कायस्योत्कृष्टा भवस्थितिः'त्रिदिनाः' त्रयो दिवसा भवति । यदवादि श्रीप्रज्ञापनायाम्–"तेउकाइयाणं पुच्छा गोयमा! जहन्नेणं अंतो-मुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि राइंदियाइं" (प.४, सू.९६।भा.१, पत्र.१७२।१) इति ।

"एवं" इत्यादि,' एवं' एतंशब्दः साम्यार्थे-ऽपि वर्तते, तेन यथा-ऽप्कायसामान्यवायुकायसामान्य-तेजःकायसामान्-यानां यथाक्रमशः सप्तसहस्रवर्षाणि त्रिसहस्रवर्षाणि त्रयो-ऽहोरात्राश्चोत्कृष्टभवस्थितिः प्रतिपादिता तथैव 'तेषाम्' अप्कायादीनां 'बादर-बादरसमाप्तयोः' बादरौघ-पर्याप्तबादर भेदयोरपि ज्येष्ठा भवस्थितिर्वेद्या ।

किमुक्तं भवति–बादराप्कायिकौघ-पर्याप्तबादराप्कायिकयोरुत्कृष्टा भवस्थितिः सप्तसहस्रवर्षमाना भवति। बादरवायुकायिकौघ-पर्याप्तबादरवायुकायिकयोर्ज्येष्ठा भवस्थितिस्त्रिसहस्रहायनमानाऽस्ति, बादरतेजःकायिकौघ-पर्याप्तबादरतेजःकायिकयोर्गुर्वी भवस्थितिस्त्रयोऽहोरात्रा भवति।

उक्तञ्च श्रीमत्यां प्रज्ञापनायाम्—"बायरआउकाइयाणं पुच्छा गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सत्तवाससहस्साइं... बायरतेउकाइयाणं पुच्छा, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि राइंदियाइं,.....बायरवाउकाइयाणं पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि वाससहस्साइं, (प.४,सू.६६।भा.१. पत्र.११२) इति।

एषा च बादराप्कायिकादीनां सामान्यानां ज्येष्ठा भवस्थितिरेवोदिता,तथा-ऽपि सा पर्याप्तबादराप्कायिकादीनामपि द्रष्टव्या,अपर्याप्तबादराणामन्तर्मुहूर्तमात्रस्थितिकत्वेन पर्याप्तबादरापेक्षयैव बादराप्कायिकसामान्यादीनामुत्कृष्टभवस्थितेः सम्भवात्, किञ्च पञ्चसंग्रहवृत्तौ यथोक्तप्रमाणा प्रकृष्टा भवस्थितिः पर्याप्तबादराप्कायिकादीनां श्रीमन्मलयगिरिसूरिपादैः प्रोक्ता। तथा च तद्ग्रन्थः-"बादरपर्याप्ताप्कायिकानां सप्तवर्षसहस्राणि, बादरपर्याप्ततेजस्कायिकानां त्रयो-ऽहोरात्राः। पर्याप्तबादरवायुकायिकानां त्रीणि वर्षसहस्राणि,' (द्वा.२. गा.३५/भा.१, पत्र.७०-२) इति।

श्रीप्रज्ञापनायां तु पर्याप्तभेदेषु करणपर्याप्तविवक्षयाऽन्तर्मुहूर्त्तेना यथोक्तमाना ज्येष्ठभवस्थितिः पर्याप्तबादराप्कायिकादित्रयस्य गदिता,स च विवक्षाभेदः प्रागेव कथितः॥६॥

साम्प्रतं गाथापूर्वार्धेन वनस्पतिकायभेदत्रयस्य ज्येष्ठा भवस्थितिः कथ्यते—

वासा-ऽत्थि दस सहस्सा, वणपत्तेअवणतस्समत्ताणं ।

(प्रे०) **"वासा"** इत्यादि, 'वनप्रत्येकवनतत्समाप्तानां' पदैकदेशे पदसमुदायस्य गम्यमानत्वाद् वनशब्देन वनस्पतिकायग्रहणसम्भवात् समाप्तशब्दस्य पर्याप्तार्थत्वाच्च वनस्पतिकायौघस्य प्रत्येकशरीरवनस्पतिकायसामान्यस्य पर्याप्तप्रत्येकशरीरवनस्पतिकायस्य चोत्कृष्टा भवस्थितिर्दश सहस्राणि वर्षाण्यस्ति । **तथा चात्र वनस्पतिकायौघसत्कोत्कृष्टभवस्थितौ श्रीप्रज्ञापनासूत्रवचनम्**—'वणप्फइकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं," (प. ४, सू. ६६ भा. १, पत्र. १७२-२) इति । एषा च वनस्पतिकायसामान्यस्य गुर्वी भवस्थितिः प्रत्येकशरीरवनस्पतिकायापेक्षया भवति, प्रत्येकशरीरवनस्पतिकायस्या-ऽपि सा पर्याप्तप्रत्येकशरीरवनस्पतिकायमाश्रित्य प्राप्यते, ततः प्रत्येकशरीरवनस्पतिकाय-तत्पर्याप्तभेदयोरपि यथोक्तमानैव ज्येष्ठा भवस्थितिः सिध्यति । किञ्च **श्रीमलयगिरिसूरिपादैः पञ्चसंग्रहवृत्तौ** पर्याप्तप्रत्येकशरीरवनस्पतिकायस्य यथोक्तमाना प्रकृष्टा भवस्थितिः प्रतिपादिता । **तदक्षराणि त्वेवम्**—"पर्याप्तबादरप्रत्येकवनस्पतीनां दश वर्षसहस्राणि" (द्वा. २, गा. ३५ भा. १, पत्र. ७०-२) इति । **तथा श्रीजीवसमासे तद्वृत्तौ च** प्रत्येकवनस्पतिकायसामान्यस्य यथोक्तमाना प्रकृता भवस्थितिरुक्ता । **तथा चोक्तं श्रीजीवसमासे**—"बावीससत्त तिण्णि च, वाससहस्साण दस य उक्कोसा । पुढविदगानिलाणं तेयतरुसु तेऊ तिरायं च ॥२०७॥" इति । **एवं तद्वृत्तावपि ।**

सम्प्रति गाथोत्तरार्धेन पञ्चेन्द्रियौघादीनामुत्कृष्टां भवस्थितिमभिधातुमाह—

दुपणिंदितसपुमणपुम-सण्णीणं जलहिनेत्तीसा ॥७॥

(प्रे०) "दुपणिंदि०" इत्यादि, 'द्विपञ्चेन्द्रियत्रसपुंनपुंसकसंज्ञिनां' द्विशब्दस्य द्वाभ्यामभिसम्बन्धात्, 'व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्ति०' इति न्यायाच्च पञ्चेन्द्रियौघ-तत्पर्याप्त-त्रसकायौघ-तत्पर्याप्त-पुरुषवेद-नपुंसकवेद-संज्ञिलक्षणानां सप्तानामुत्कृष्टा भवस्थितिः 'जलधित्रयस्त्रिंशत्' त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि भवति, सा च यथासंभवमनुत्तरसुरापेक्षया सप्तमपृथ्वीनारकापेक्षया वा लभ्यते यतोऽनुत्तरसुरान् सप्तमपृथिवीनारकान् विहाया-ऽन्येषां त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणायां ज्येष्ठभवस्थितेरप्राप्यमाणत्वात् । तत्र पुंवेदस्यानुत्तरसुरापेक्षयैव नपुंसकवेदस्य सप्तमनरकापेक्षयैव सा अवगन्तव्या, सप्तमनरके नपुंसकवेदस्यैवानुरक्तसुरेषु पुंवेदस्यैव सम्भवात् शेषपञ्चकस्य पुनरुभयापेक्षया प्राप्यते, शेषपञ्चके पुंनपुंसकलक्षणवेदद्वयस्याऽपि समावेशेनाऽनुत्तरसुराणां सप्तमपृथिवीनरकाणां च सम्भवात् ॥७॥

अधुना गाथापूर्वार्धेन स्त्रीवेदासंज्ञिनोरुत्कृष्टभवस्थितिं चिकथयिषुराह—

थीअ पणवण्णपलिआ, भवे असण्णिस्स पुव्वकोडी उ ।

(प्रे०) "थीअ" इत्यादि, स्त्रीवेदस्य प्रकृष्टा भवस्थितिः पञ्चपञ्चाशत्पल्यानि=पल्योपमानि भवति, ततोऽधिकस्थितिकभवस्यासम्भवात् । एषा च भवस्थितिर्देवीमधिकृत्य ज्ञेया, यतो मानुषीणां तिरश्चीनाञ्चोत्कृष्टभवस्थितेः पल्योपमत्रय-

प्रमाणत्वेन तदपेक्षया यथोक्तभवस्थितेरलाभात् ।

देवीसत्का यथोक्तमाना ज्येष्ठभवस्थितिश्च श्रीप्रज्ञापना-सूत्रादिषु प्रतिपादिता । तथा चात्र प्रज्ञापनासूत्रम्-

'देवाणियाणं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता ?, गोयमा ! जहन्नेणं पलिओवमं उक्कोसेणं पणपन्नं पलिओवमाइं, (पद.४, सू.१०२।भा-१, पत्र.१७६-१) इति ।

"भवे" इत्यादि, 'असंज्ञिनो ज्येष्ठा भवस्थितिः पूर्वकोटि-र्भवेत्, एषा च पूर्वकोटी पर्याप्तजलचरासंज्ञ्यपेक्षया विज्ञेया, न शेषासंज्ञिनोऽधिकृत्य, तेषामेतावत्या उत्कृष्टभवस्थितेर-भावात् । तथाहि-पर्याप्तजलचरासंज्ञिनो ज्येष्ठा भवस्थितिः पूर्व-कोटिः, पर्याप्तचतुष्पदस्थलचरासंज्ञिनश्चतुरशीतिवर्षसहस्राणि, पर्याप्तोरः परिसर्पस्थलचरासंज्ञिनस्त्रिपञ्चाशद्वर्षसहस्राणि, पर्याप्तभुजपरिसर्पस्थलचरासंज्ञिनो द्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्राणि, पर्याप्तखेचरासंज्ञिनो द्विसप्ततिवर्षसहस्राणि । यदुक्तम्-

"सम्मुच्छपुव्वकोडी, चउरासीई भवे सहस्साइं ।
तेवण्णा बायाला, बावत्तरि चेव पक्खीणं ॥" इति ।

तेन पर्याप्तजलचरासंज्ञिमाश्रित्यासंज्ञिसत्का पूर्वकोटि-प्रमाणा गुरुभवस्थितिः प्राप्यते, न शेषासंज्ञ्यपेक्षया ।

इदानीं गाथोत्तरार्धेन प्रकृतशेषमार्गणानां प्रकृतज्येष्ठ-भवस्थितिः कथ्यते-

भिन्नमुहुत्तमियरगइ-इंदियकायपणतीसाए ॥८॥

(प्रे०) "भिन्नमुहुत्त०" इत्यादि, 'इतरगतीन्द्रियकायपञ्च-त्रिंशतः' उक्तनरकगत्योर्द्वाद्यष्टसप्ततिं विना गतीन्द्रियकाय-सत्कानां शेषाणामपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगादीनां पञ्चत्रिंश-

द्भेदानां ज्येष्ठा भवस्थितिः 'भिन्नमुहूर्तम्' अन्तर्मुहूर्तप्रमाणा भवति.प्रोक्तानां मध्ये कतिपयानामपर्याप्तत्वेन कियतां सूक्ष्मत्वेन केषाञ्चित्साधारणशरीरवनस्पतिकायभेदत्वेन चोत्कृष्टभवस्थितेरन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वात् । यदुक्तं श्रीजीवसमासे—

'एएसिं च जहण्णं, उभयं साहारसव्वसुहुमाणं ।
अंतोमुहुत्तमाऊ,सव्वापज्जत्तयाणं च ॥२११॥" इति ।

एवं प्रज्ञापनासूत्रादिग्रन्थान्तरसंवादोऽपि वक्तव्यः ।

शेषा अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगादयः पञ्चत्रिंशद्भेदा नामतश्चेमाः-अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगऽपर्याप्तमनुष्य-सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रिया - ऽपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रिया - ऽपर्याप्तबादरैकेन्द्रियाऽपर्याप्तद्वीन्द्रिया-ऽपर्याप्तत्रीन्द्रिया - ऽपर्याप्तचतुरिन्द्रिया-ऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रिय-सूक्ष्मपृथिवीकाय-पर्याप्तसूक्ष्मपृथिवीकाया-ऽपर्याप्तसूक्ष्मपृथिवीकाया-ऽपर्याप्तबादरपृथ्वीकाय-सूक्ष्माप्काय - पर्याप्तसूक्ष्माप्काया-ऽपर्याप्तसूक्ष्माप्काया-ऽपर्याप्तबादराप्काय-सूक्ष्मतेजःकाय-पर्याप्तसूक्ष्मतेजःकाया-ऽपर्याप्तसूक्ष्मतेजस्काया-ऽपर्याप्तबादरतेजस्काय-सूक्ष्मवायुकाय-पर्याप्तसूक्ष्मवायुकाया-ऽपर्याप्तसूक्ष्मवायुकाया-ऽपर्याप्तबादरवायुकाय-साधारणशरीरवनस्पतिकाय - सूक्ष्मसाधारणशरीरवनस्पतिकाय—पर्याप्तसूक्ष्मसाधारणशरीरवनस्पतिकाया- ऽपर्याप्तसूक्ष्मसाधारणशरीरवनस्पतिकाय - बादरसाधारणशरीरवनस्पतिकाय—पर्याप्तबादरसाधारणशरीरवनस्पतिकाया-ऽपर्याप्तबादरसाधारणशरीरवनस्पतिकाया-ऽपर्याप्तप्रत्येकशरीरवनस्पतिकाया-ऽपर्याप्तत्रसकायाः ।

तदेवं गतीन्द्रियकायवेदसंज्ञिलक्षणमूलसत्कोत्तरभेदानां ज्येष्ठा भवस्थितिः प्रतिपादिता ॥८॥ ॥ इति भवस्थितिः ॥

साम्प्रतं प्रस्तुतग्रन्थसमाप्तिदर्शिकां ग्रन्थोपसंहारस्वरूपा-मेकां पथ्यार्यामाह—

सिरिवीरसेहरविजय-मुणिणा सिरिपेमसूरिसंणिज्झे ।
देवगुरुपहावाओ, भवट्ठिई णिम्मिआ एसा । ९ ॥

(प्रे०) "सिरि०" इत्यादि,'श्रीप्रेमसूरिसान्निध्ये' श्रिया=रत्नत्रयीप्रमुखलक्ष्म्या सहिताश्च ते प्रेमसूरयः प्रगुरुगुरवो गच्छाधिपाः, श्रीप्रेमसूरयः, तेषां सान्निध्ये श्रीप्रेमसूरिसान्निध्ये=एतावता-ऽस्माकं प्रप्रपितामहगुरुपादानां पुण्यनामधेयानामाचार्यभगवतां श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वराणां परमपवित्रसान्निध्यवर्तिना 'श्रीवीरशेखरविजयमुनिना' श्रिया=ज्ञानादिलक्ष्म्या युतश्चासौ वीरशेखरविजयः=तत्संज्ञकस्तच्चरणोपासकः क्षुल्लकः साधुः श्रीवीरशेखरविजयः स चासौ मुनिः=श्रमणः श्रीवीरशेखरविजयमुनिः, तेन श्रीवीरशेखरविजयमुनिना 'देवगुरुप्रभावात्' देवश्चाऽर्हत्सिद्धरूपो गुरुश्चा-ऽऽचार्यादिस्वरूपो गणधरादिश्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरप्रभृतिस्वगुर्ववसानो वा देवगुरू, तयोः प्रभावात्=माहात्म्यात् देवगुरुप्रभावात्=देवगुर्वनुग्रहात्'एषा' अनन्तरभणिता भवस्थितिः प्राग्वर्णितार्था'निर्मिता'प्रणीता॥१६॥

इदानीं ग्रन्थकारः स्वस्य छाद्मस्थ्येन मन्दमत्यादिना च किमपि स्खलनं स्यात्तद् दूरीकर्तुमनाः संविज्ञेषु बहुश्रुतेषु बहुमानधर्मा विज्ञप्तिमेकया गाथया वितन्वन्ना-ऽऽह—

मंदमइअणुवओगा-इहेउणा किं पि आगमविरुद्धं ।
एत्थ सिआ करिअ किवं,मइ तं सोहन्तु सुअणिहिणो॥१०॥

॥ इति मूलग्रन्थः समाप्तः ॥

(प्रे०) "मंदमह०" इत्यादि, 'अत्र' अस्मिन् प्रस्तुते भवस्थितिसंज्ञके प्रकरणे यत्तदोर्नित्यसम्बन्धाद् यच्छब्द आक्षिप्यते यत्किमपि 'मन्दमत्यनुपयोगादिहेतुना' मन्दा=जाड्या चासौ मतिः=बुद्धिर्मन्दमतिः=अप्रगल्भशेमुषी न उपयोगः=चित्तैकाग्रता अनुपयोगः=असावधानता, मन्दमतिश्चा-ऽनुपयोगश्च मन्दमत्यनुपयोगौ, तौ आदौ येषाम् ; ते मन्दमत्यनुपयोगादयः, अत्राऽऽदिपदेन छाद्मस्थ्य-दृष्टिदोषादयो ज्ञेयाः, त एव हेतुः, मन्दमत्यनुपयोगादिहेतुस्तेन मन्दमत्यनुपयोगादिहेतुना-ऽऽगमविरुद्धं=शास्त्रबाह्यं स्यात्तद् मयि ममोपरि कृपां=प्रसादं 'कृत्वा' विधाय श्रुतनिधयः=श्रुतागमशालिनः शोधयन्तु=अशुद्धपदनिराकरणेन शुद्धपदानयेन शुद्धिं कुर्वन्तु ॥१७॥

प्रेमप्रभाख्यवृत्त्या, सुशोभिता प्रेमसूरिगणे ।
मुनिवीरशेखरेण, स्वोपज्ञभवस्थितिश्चैषा ॥ १ ॥
कुशलं तया यदाप्तं, तेन कुशलमस्तु विश्वविश्वस्य ।
यत्किमपीह क्षुण्णं, स्यात्तच्छोध्यं बुधैर्विधाय कृपाम् ॥२॥

॥ इति प्रेमप्रभावृत्तिः समाप्ता ॥

इति

स्वोपज्ञप्रेमप्रभावृत्तिसुशोभिता

मुनिश्रीवीरशेखर-

विजयविरचिता

भवस्थितिः

समाप्ता

॥ अथ भवस्थितिसत्कानि दश परिशिष्टानि ॥

॥ अथ प्रथमं परिशिष्टम् ॥

॥ मूलगाथाः ॥

खविअभवठिइसिरिमुहरि-पासं पणमिअ हियत्थमत्तसुया ।
वोच्छं भवठिइमोहे, गइइंदियकायवेएसुं ॥ १ ॥

खुड्डुभवोऽत्थि भवठिई, हस्सा तेत्तीससागरा जेट्ठा ।
सव्वणिरयदेवाणं, दुहा-ऽत्थि कायठिइसमियराण नहू ॥ २ ॥

णवरं अंतमुहुत्तं, थीए खुड्डुगभवो णपुंसस्स ।
गुरुभवठिई तिपल्ला, तिरि-तिपणिंदितिरियणराणं ॥ ३ ॥

एगिंदिय-पुहवीणं, वरिससहस्साणि होइ बावीसा ।
सा चेव होइ तेसिं, बायर-बायरसमत्ताणं ॥ ४ ॥

बेइंदियाइगाणं, कमसो बारह समा अउणवण्णा ।
दिवसा तह छम्मासा, तप्पज्जत्ताण एमेव ॥ ५ ॥

दसवाऊणं कमसो, वाससहस्साणि सत्त तिण्ण भवे ।
तिदिणा-ऽग्गिस्सेवं सिं, बायर-बायरसमत्ताणं ॥ ६ ॥

वासा-ऽत्थि दस सहस्सा, वणपत्तेअवणतस्समत्ताणं ।
दुपणिंदितसपुमणपुम-सण्णीणं जलहितेत्तीसा ॥ ७ ॥

थीअ पणवण्णपलिआ, भवे असण्णिस्स पुव्वकोडी उ ।
भिन्नमुहुत्तमियरगइ-इंदियकायपणतीसाए ॥ ८ ॥

सिरिवीरसेहरविजय-मुणिणा सिरिपेमसूरिसंणिज्झे ।
देवगुरुपहावाओ, भवट्ठिई णिम्मिआ एसा ॥ ९ ॥

मंदमइमपुवओगा-इहेउणा किं पि आगमविरुद्धं ।
एत्थ सिआ करिअ किवं, मइ तं सोहन्तु सुअणिहिणो ॥ १० ॥

॥ अथ द्वितीयं परिशिष्टम् ॥

॥ मूलगाथाद्यांशाः ॥

अकारादिक्रमेण मूलगाथाद्यांशाः

अनु. गाथाद्यांशाः	गाथाङ्काः	पृष्ठाङ्काः
ए		
१ एगिंदिय-पुहवीणं,	॥४॥	१३
ख		
२ खविअभवठिइसिरिमुहरि-॥१॥		२
ख		
३ खुड्डभवोऽत्थि भवठिई,	॥२॥	५
ण		
४ णवरं अंतमुहुत्तं,	॥३॥	११-१२
थ		
थीअ पणवण्णपलिआ,	॥८॥	१६-२०
द		
६ दगवाऊणं कमसो,	॥६॥	१६
ब		
७ बेइंदियाइगाणं,	॥५॥	१५
म		
८ मंदमइअणुवओगा—	॥१०॥	२२
व		
९ वासाऽत्थ दससहस्सा,	॥७॥	१८-१९
स		
१० सिरिवीरसेहरविजय-	॥९॥	२२

॥ अथ तृतीयं परिशिष्टम् ॥

॥ साक्षिग्रन्थाः ॥

अकारादिक्रमेण भवस्थितिग्रन्थवृत्तिगतानां साक्षिग्रन्थानां नामसूचिः—

अनु.	ग्रन्थनाम	पृष्ठाङ्काः
१	जीवसमासः—	६, १०, १२, १५, १८, २१
२	जीवाजीवाभिगमसूत्रम्—	१२
३	तत्त्वार्थसूत्रभाष्यम्—	१०
४	तत्त्वार्थसूत्रम्—	१०
५	पञ्चसंग्रहमलयगिरिसूरिवृत्तिः—	१३, १४, १७, १८
६	पञ्चसंग्रहवृत्तिः—	१५
७	प्रज्ञापनासूत्रम्—	७, १४, १५, १६², १७, १८, २०
८	यदुक्तम् —	२०

॥ अथ चतुर्थं परिशिष्टम् ॥

॥ साक्षिग्रन्थकारः ॥

अनु.	ग्रन्थकारनाम	पृष्ठाङ्काः
१	मलयगिरिसूरिः—	१३, १४, १७, १८

॥ अथ पञ्चमं परिशिष्टम् ॥

॥ प्रतिदिष्टग्रन्थाः ॥

॥ अकारादिक्रमेण भवस्थितिग्रन्थवृत्तिगतानामतिदिष्टग्रन्थानां नामसूचिः—

अनु.	ग्रन्थनाम	पृष्ठाङ्काः
१	जीवसमासः—	१५, १८
२	जीवसमासवृत्तिः	—१८[२]
३	जीवाजीवाभिगमसूत्रम्	—१०
४	तत्त्वार्थसूत्रभाष्यम्—	१०[२]
५	तत्त्वार्थसूत्रम्—	१०
६	पञ्चसंग्रहः—	१०
७	पञ्चसंग्रहमलयगिरिसूरिवृत्तिः-	१८, १७, १८
८	प्रज्ञापनासूत्रम्-१२[४], १४[२],	१७, २०, २१
९	बृहत्संग्रहणी—	१०

॥ अथ षष्ठं परिशिष्टम् ॥

॥ अतिदिष्टग्रन्थकारः ॥

अनु.	ग्रन्थकारनाम	पृष्ठाङ्काः
१	मलयगिरिसूरिः—	१०, १७, १८

॥ अथ सप्तमं परिशिष्टम् ॥

॥ व्याकरणसूत्राणि ॥

अकारादिक्रमेण भवस्थितिग्रन्थवृत्तिगतानां
व्याकरणसूत्राणां सूचिः—

अनु.	व्याकरणसूत्रम्	पृष्ठाङ्काः
१	प्राक्काले (सि. ५-४-४७)	३
२	गम्ययपः कर्माधारे (सि. २-२-७४)	३
३	शेषाद्वा (सि. ७-३-१७५)	१५

॥ अथा-ऽष्टमं परिशिष्टम् ॥

॥ न्यायाः ॥

अकारादिक्रमेण भवस्थितिग्रन्थवृत्तिगतानां
न्यायानां सूचिः—

अनु.	न्यायः	पृष्ठाङ्काः
१	तुलादण्डः—	११
२	यथोद्देशं निर्देशः—५	
३	व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्ति०-१६	

॥ अथ नवमं

भवस्थित्युपयोगिन्यः

५ मूलमार्गणाः

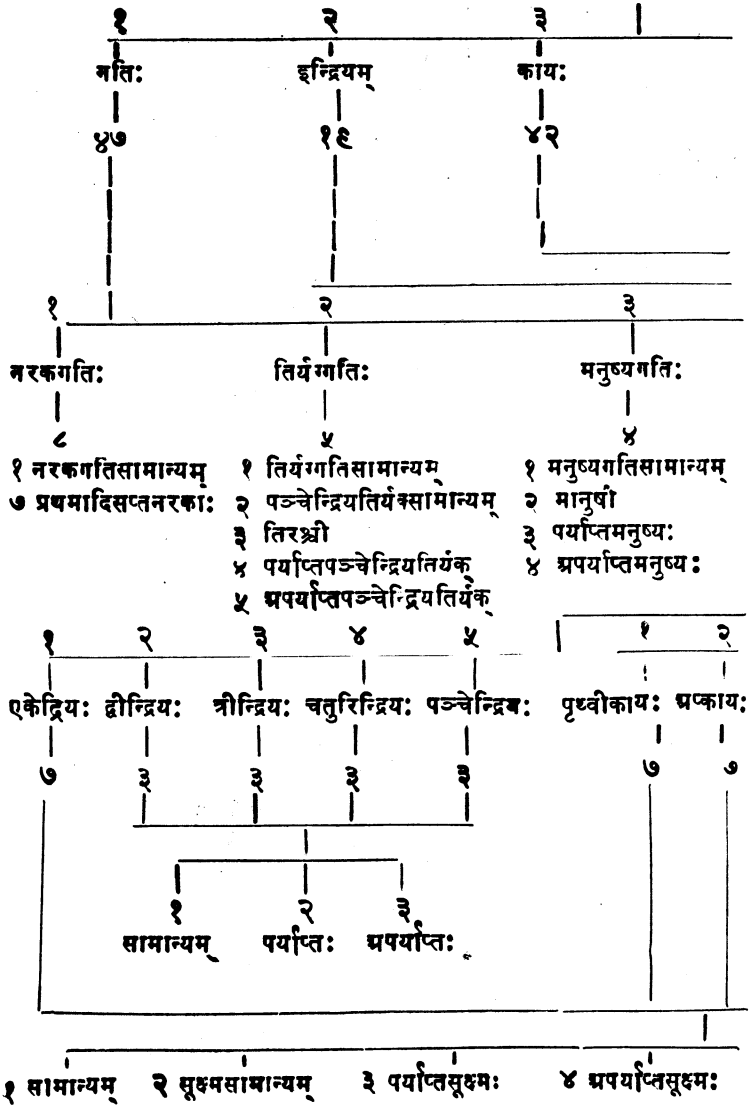

परिशिष्टम् ॥

(गाथा १)

शेषामुत्तर ११३ मार्गणाप्रदर्शियन्त्रम्

४ — वेदः — ३
१ स्त्रीवेदः
२ पुरुषवेदः
३ नपुंसकवेदः

५ — संज्ञी — २ = ११३ उत्तरमार्गणाः
१ संज्ञी
२ असंज्ञी

४ — देवगतिः — ३०
१ देवगतिसामान्यम्
३ भवनपति-व्यन्तर-ज्योतिष्काः
१२ सौधर्मादिद्वादशकल्पस्थाः
६ ग्रैवेयकाः
५ अनुत्तराः

३ — तेजस्कायः — ७

४ — वायुकायः — ७

५ — वनस्पतिकायः — ११
१ सामान्यम्
२ प्रत्येकवनस्पतिः
३ पर्याप्तप्रत्येक०
४ अपर्याप्तप्रत्येक०
साधारणवन०
७

६ — त्रसकायः — ३
१ सामान्यम्
२ पर्याप्तः
३ अपर्याप्तः

५ बादरसामान्यम्
६ पर्याप्तबादरः
७ अपर्याप्तबादरः

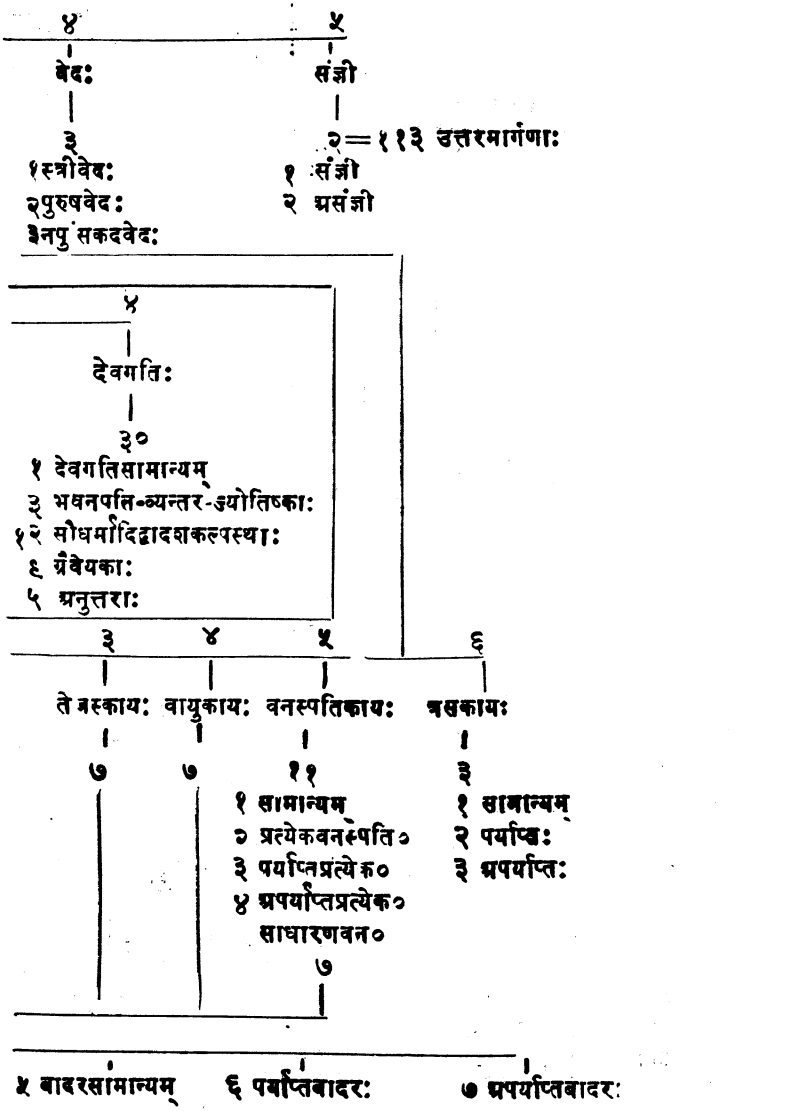

॥ अथ दशमं परिशिष्टम् ॥

जघन्यो-त्कृष्टभवस्थितिप्रदर्शियन्त्रम् । (गा. २-८)

ओघतो जघन्यभवस्थितिः क्षुल्लकभवप्रमाणा, उत्कृष्टभवस्थितिः ३३ सागरोपमाणि भवति । (गा. २)

जघन्यप्रमाणम्	गतिः	इन्द्रियम्	कायः	वेदः	संज्ञी	सर्वा:	गाथाङ्काः
१०००० वर्षाणि	नरक० प्र० नरक० सर० भवन० व्यन्तर० ५					५	२
१,३,७,१०,१७,२२सा.	द्वितीयादिद्दनरक० ६					६	२
$\frac{1}{8}$ पल्योपमम्	ज्योतिष्कसुर० १					१	२
१ पल्योपमम्	सौधर्मसुर० १					१	२
सा. १ ,,	ईशानसुर० १					१	२
२ सागरोपमे	सनत्कुमारसुर० १					१	२
सा. २ ,,	माहेन्द्रसुर० १					१	२
७ सागरोपमाणि	ब्रह्मसुर० १					१	२
ब्रह्मसुराद्युत्कृष्टभवस्थितिः क्रमशः	लान्तकसुरादयः २० चतुरनुत्तरसुरान्ताः					२०	२
नास्ति	सर्वार्थसिद्धसुर० १					१	२
अन्तर्मुहूर्त्तम्	पर्या०२ योनि०२४	पर्याप्त० ६	पर्याप्त० १०	पुंस्त्री		२४	२-३
क्षुल्लकभवः	शेष० ५	शेष० १३	शेष० ३०	नपुं. १	सर्व०२	५१	२ ३
उत्कृष्टप्रमाणम् ३३ सागरोपमाणि	नरकौघ. सप्तमनरक. सुरौघ, पञ्चानुत्तर०८	पञ्चे., प.पञ्चे०२	त्रस०,प०त्रस० २	पुं० नपुं. २	संज्ञी० १	१५	२-७
१,३,७,१०,१७,२२स. क्रमशः [illegible] नरक. ६						६	२

३ पल्योपमानि	अपर्या. विना तिर्य० ४ ,, ,, मनु० ३					७	३
साधिकसागरोपमम्	भवनपतिसुर० १					१	२
पल्योपमम्	व्यन्तरसुर० १					१	२
सा. ,,	ज्योतिष्कसुर० १					१	२
२ सागरोपमे	सौधर्मसुर० १					१	२
सा. २ ,,	ईशानसुर० १					१	२
७ सागरोपमाणि	सनत्कुमारसुर० १					१	२
सा. ७ ,,	माहेन्द्रसुर० १					१	२
१० ,,	ब्रह्मसुर० १					१	२
१४ ,,	लान्तकसुर० १					१	२
१७ त: ३१ ,,	महाशुक्रसुरादयः १५					१५	२
२२००० वर्षाणि		एके.,बा.ए.,प.बा.ए३	पृ.,बा.पृ.,प.बा.,पृ. ३			६	४
१२ ,,		द्वीन्द्रिय.,प.द्वीन्द्रय.२				२	५
४९ दिवसा:		त्रीन्द्रिय.प.त्रीन्द्रिय.२				२	५
६ मासा:		चतुरिन्द्रिय.प.चतु.२				२	५
७००० वर्षाणि			अप्,बा.अप्.प.बा.अप्.३			३	६
३००० ,,			वायु.,बा.वा.,प.बा.वा.३			३	६
३ दिवसा:			तेज.,बा.ते.,प.बा.ते.३			३	६
१०००० वर्षाणि			वन.,पत्ये.,प.प्रत्ये. ३			३	७
५५ पल्योपमानि				स्त्री.१		१	८
पूर्वकोटिवर्षाणि					असंज्ञि.१	१	८
अन्तर्मुहूर्त्तम्	अप.पञ्चे.ति.,अप.मनु.२	शेष० ८	शेष० २५			३५	८

इति

मुनिश्रीवीरशेखरविजयनिर्मिता

स्वोपज्ञ-

प्रेमप्रभावृत्तिसुशोभिता

भवस्थितिः

दशपरिशिष्टपरिकलिता

समाप्ता